स्वा. आत्मानंद तीर्थ

ॐ

तीर्थ का प्रसाद

लेखक तथा प्रकाशक
पं० हुलिया राम कालिया
पेन्शनर हैड पोस्ट-मास्टर

मूल्य—
पढ़ो; पढ़ाओ, तथा प्रचार करो

छापर प्रिन्टिङ्ग प्रैस माई हीराँ गेट जालन्धर

॥ हरि ओ३म् तत् सत् ॥

संसार चन्द- लो पुत्र ! खाकर देखो कैसा स्वादिष्ट लड्डू है।

ज्ञान चन्द-पिता जी ! मैं एकादशी का व्रती हूं।

संसार चन्द—अरे तुझे लज्जा नहीं आती कि मेरा पुत्र होकर तू पोपों के जाल में फंस गया।

ज्ञान चन्द—पिता जी ! सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चहिये। मैंने आर्य समाज के इस नियम को अपना लिया है, शेष पण्डित जी से पूछ लें !

संसार चन्द—पण्डित जी ! कृपया कहिये क्या बात है ?

सर्वमित्र ! इस वर्ष गुरुकुल कांगड़ी के जलसे के पश्चात् कुछ दिनों के लिये हम ऋषिकेश चले गये, वहां स्वामी भूमानन्द जी से हमारी भेंट हुई। आदत से मजबूर यज्ञदत्त ने द्वैत सिद्ध करने के लिए बात चलाई, स्वामी जी चुपचाप सुनते रहे। उत्तर के समय उन्होंने इतना ही कहा कि द्वैत और

अद्वैत सिद्धि के लिए झगड़ने से निस्तारा नहीं होगा। अमर जीवन लाभ करने के लिये साधन करो, उनमें कोई भेद नहीं है, चाहे द्वैत मानो वा अद्वैत। झगड़ने में अपने जीवन को व्यर्थ मत खोओ। आप लोग तीर्थभूमि से लाभ उठाओ, निष्काम भाव से प्रभु का स्मरण करो। ऋषियों की तपोभूमि होनेसे यहाँ भजन में मन लग जाता है, जिससे अन्तःकरण शुद्ध होता है, और खोजने पर तीर्थों में तत्व को को जानने वाले महात्मा मिल जाते हैं और उन से ज्ञान जैसी वस्तु की प्राप्ती होती है, जिस के तुल्य पवित्र करने वाला और कुछ नहीं। ज्ञान-भानु के उदय होते ही सभी झगड़े स्वयं मिट जाते हैं।

यज्ञदत्त—स्वामी जी ! मुझे आप की शिक्षा की जरूरत नहीं, मैं तो सत् असत् का निर्णय चाहता हूं। आर्य समाज और सनातन धर्म इन दोनों में से कौन सा धर्म सच्चा है ?

भूमानन्द—महाशय जी ! धर्म तो एक ही है, अनेक हों तो तुलना भी करूँ। धर्म है. किसी वस्तु या

व्यक्ति की वह वृत्ति है जो उसमें सदा रहे और उस से कभी पृथक न हो, जैसे अग्नि में दाह और प्रकाश। इसी प्रकार देश, वेश, भाषा, आकारों और विचारों की भिन्नता के होते हुए मनुष्य मात्र को सदा यही कामनाएँ घेरे रहती हैं कि वह सदा बना रहे और हर प्रकार से बड़ा हो और उसे किसी प्रकार का दुःख न हो। यही सनातन धर्म है। इसका एकमात्र सुख-मूलक उपाय आत्म-ज्ञान है, जो मन की शुद्धि पर निर्भर है। मन सत्य से शुद्ध होता है।

दुःख का मूल कामनाओं की अपूर्णता है. उपरोक्त कामनाएँ सभी की एक जैसी हैं, इस लिये वह कर्म मत जिस के करने से इस लोक में सुख हो और परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो धर्म कहा जाता है। जिसे कर्तव्य, कानून, यज्ञ, यज्ञाङ्ग, ईश्वर भक्ति, कर्तव्याकर्तव्य, अवधारण विषयक शास्त्र अनुसार रस्मो रिवाज।

आत्मा तो अमर और निर्विकार है, बिगड़ा हुआ तो व्यवहार ही है, इसी के सुधारने के लिए तो

सब यत्न हैं। यदि मैं सुधर जाऊँ तो मानो संसार की शान्ति को भङ्ग करने वालों में एक की न्यूनता हो गई। आततायी संसार की शान्ति को भङ्ग करने के हेतु हैं और आततायी कहाते हैं। किसी के जर, जोरू और जमीन को छीनने वाला, अस्त्र, शस्त्र, विष अथवा आग लगा कर मनुष्य की हत्या करने वाला। इन ही को सीधा करने के लिये संसार में विधान बनाया जाता है। धर्म का भी यही प्रयोजन है। हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थ ईश्वर की वाणी वेद हैं। ईश्वर को ईश्वरवादी सर्वज्ञ मानते हैं, इस लिये ईश्वर वाणी में प्रतिवाद (तरमीम) असम्भव है। ऋषि एवं मुनि प्रणीत वेद के व्याख्यान अनुपाख्यान आदि जीव, ईश्वर, प्रकृति आदि सूक्ष्म तत्वों को जैसे क्रमबद्ध वर्णन करते हैं, वैसा किसी अन्य मत में देखने में नहीं आता और न ही अन्य मत-मतान्तरों के धर्म ग्रन्थों में सांसारिक और पारमार्थिक उलझनों को सुलझाने वाली जिज्ञासु को कोई नई बात मिलती है जो हिन्दू धर्म ग्रन्थों में विद्यमान न हो।

पश्चिमी सभ्यता मनुष्य के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिये कामनाओं को बढ़ाने की पक्षपाती है ताकि जरूरतें बढ़ने पर उपज बढ़े और आजीविका का प्रश्न हल हो। हिन्दू सभ्यता कामना घटाने को सुख का कारण बताती है और सदाचार को परम धर्म मानती है जो मनुष्य जीवन का ऊँचा स्तर है।

भीष्म पितामह जैसे महात्मा, द्रोण और कृपाचार्य जैसे विद्वान् और गुरुजनों को भी आततायियों के सहायक होने से मृत्यु के घाट उतारने की शिक्षा देती है। ऐसा न करने से संसार में भ्रष्टाचार फैलता और संसार की शान्ति भङ्ग होती है। विचारों की भिन्नता के कारण हिन्दू धर्म वैमनस्य नहीं सिखाता और न ही पक्षपात और अपूज्यों की पूजा।

प्रमाद का विरोधी और परिश्रम का पक्षपाती है, ऐसा होते हुए कर्म फल को प्रारब्ध पर छोड़ संतोष सिखाता है जो परम धन माना गया है। क्रिया प्रति-क्रिया के नियम को अटल सिद्ध करता हुआ उसके फल स्वरूप पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक मानता है। जन्म-

अंध, परिश्रम करते हुए भी पेटभर भोजन न मिलना, दरिद्रता का दूर न होना, अकारण तो नहीं। किस २ कर्म का क्या २ फल होता है इसके लिये कर्म विपाक और मनु आदि धर्मशास्त्र देखें।

एक ही अपनी मति से अनेक हुआ २ है, न बटा हुआ बटा हुआ सा प्रतीत होता है, अनेक फिर एक से एकमेक होने को तड़प रहे हैं, इतना ही रहस्य है। हम वस्त्रों की विभिन्नता देखने में मस्त हैं, वस्त्र धारण करने वालोंको नहीं खोजते। तन-मद, धन-मद और राज्य-मद में उन्मत्त विवेक और वैराग्य शून्य खरमस्ती कर रहे हैं और नहीं सोचते कि हम अपने पाओं आप कुल्हाड़ा मार रहे हैं और स्थूल शरीर और इसके सम्बधियों के लिये जो पाप कर रहे हैं वह अवश्य भोगने पढ़ेंगे। हमारा कल्याण तो इसी में है कि हम जानें हम कौन हैं न कि हमारे पास क्या हैं।

स्वामी जी बात पूरी करने न पाये थे कि यज्ञदत्त

उतावला हो बोला. महाराज ! व्याख्यान बन्द कीजिये मतलब की बात कीजिये। स्वामी जी चुप हो गये और रामदास को इशारा कर दिया ।

रामदास—यथार्थ बात तो आप सुनना नहीं चाहते हितकर समीक्षा भी लाभदायक हुआ करती है। मैं आप के प्रश्न का उत्तर देता हूं।

सनातन धर्म के विरुद्ध सत्यार्थ प्रकाश में जो कुछ लिखा है मान लो वह सत्य ही है। तनिक आप के मत की समीक्षा कर देखें. वह निर्दोश ठहरे तो मैं उसे स्वीकार कर लूंगा वरन आपने सत् को मान अपने सुधार में लग जाना और अपने ही बन्धु वर्ग को प्रथम आर्य्य (श्रेष्ठ) बनाने का यत्न करना क्योंकि अपनी घर की आग का छोड़ कर दूसरों की बुझाने को दौड़ना बुद्धिमत्ता नहीं।

(१) वर्तमान सत्याथ प्रकाश स्वामी दयानन्द जी की बनाई हुइ नहीं किन्तु जाली है क्योंकि मारवाड़ देश से सितम्र १९८३ में अपनी मृत्यु से थोड़ा चिर पहले मैनेजर वैदिक यन्त्रालय अजमेर के नाम स्वामी

जी के लिखे पतों के अनसार सत्यार्थ प्रकाश १२ समुल्लास के पृष्ठ २७२–३१६ और १३ के ३२०–३४४ होने चाहिये। यह पृष्ठ अंक. न ही छपी हुई और न ही अजमेर में धरी हुई हस्त-लिखित पुस्तक से सिद्ध किये जा सकते हैं। स्वामी जी नई सत्यार्थ–प्रकाश की भूमिका में केवल भाषा का संशोधन मानते हैं परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है "ऐसा लिखते हैं., अङ्गरेजी भाषा में दयानन्द सरस्वती की जीवनी लेखक हरविलास सारद (वर्तमान मंत्री परोपकारिणी सभा अजमेर) पृष्ठ ४०८ पर लिखा है "पुरानी और नई सत्यार्थ-प्रकाश में केवल नाम का ही सम्बन्ध है वरना दोनों की भाषा और शैली में काफी अंतर है, दोनों पुस्तकों के विषय और सिलसिला भी पृथक २ है आप दोनों पुस्तकों का स्वयं तुलना कीजिये, तब भी यही सिद्ध होगा कि पुस्तक भूमिका के अनुसार नहीं, वेद मंत्र तक निकाल दिये हैं। महाशय जी! अपना कलंक मिटाओ और ५००) रु० इनाम पाओ।

(४) सत्यार्थ-प्रकाश जाली ही नहीं इसके सिद्धांत

भी वेद विरुद्ध हैं। ११ वें समुल्लास पृष्ठ ३४७ पर लिखा है, (उत्तर) अठारह पुराणोंके कर्ता व्यासजी होते तो इनमें इतने गपोड़े न होते क्योंकि शारीरिक सूत्र, योगशास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखनेसे विदित होता है कि व्यास जी बड़े विद्वान, सत्यवादि, धार्मिक योगी थे। जब व्यास जी ने वेद पढ़े और पढ़ा कर वेदार्थ फैलाये. उन का नाम "वेद व्यास,, हुआ क्योंकि व्यास कहते हैं वार पार की मध्य रेखा को अर्थात् ऋग्वेदके आरम्भसे लेकर, अथर्ववेदके पार पर्यंत चारों वेद पढ़े थे और शुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्यों को पढ़ाये भी थे। नहीं तो इनका जन्म का नाम कृष्णद्वैपायन था। अब आप के माने हुए पूर्ण बेदज्ञ महर्षि व्यास की साक्षी, वेद और दयानन्द जी रचित ग्रन्थों और स० प्र० के आधार पर कुछ दिग्दर्शन करा देता हूं।

सत्यार्थ-प्रकाश सप्तम समुल्लास पृष्ठ २१४ "स

'पूर्वेषमपि गुरु कालेनानवच्छेदात्,, योग १। २६ के भाष्यमें लिखा है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋषि मुनियों का इतिहास और वेद मन्त्रों के वह अर्थ हैं जो ईश्वर ने उनको समाधि में जताये।

उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तर्गत होने से प्रामाण्य हैं।

(क) आप स्वर्ग नरकको लोक विशेष नहीं मानते हैं इस लोक में सुख का नाम ही सुख है, परन्तु कठ उप० १। १। १२ में वर्णित स्वर्ग जहाँ कोई भय नहीं, न मृत्यु, न बुढ़ापा, न भूख, न प्यास और न शोक, किन्तु प्रसन्नता। संसार में ऐसा स्वर्ग कहाँ है बताईये।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं,
जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। गी० । २ । ३७

मर कर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा जीत कर पृथवी को भोगेगा। अब बताओ तुम सच्चे अथवा

भगवान कृष्ण और व्यास जी, जो मर कर भी स्वर्ग की प्राप्ति कहते है।

(ख) ११ वें समुल्लास में लिखा है कि मनुष्य जिन करके दुःखों से तरे उसका नाम तीर्थ है। जल स्थल तारने वाले नहीं किन्तु डुबा कर मारने वाले हैं। (२) क्षुधा आदि से दुःख होता, दुःख पाप का फल है। इससे भूखे रहना पाप है। (३) मूर्ति पूजा का खण्डन है।

(ग) यह भी अशुद्ध है क्योंकि वेदज्ञ ऋषि और शास्त्र इन का पोषण करते हैं।

तीर्थ सिद्धि

(1) "सैव देशावच्छन्ना न तीर्थे हनिष्यामीति,, वही हिंसा देश सम्बन्धी होती है। योग भा० सू० । २ । ३१ । "उपगह्वरे गिरीणा संङ्गमे च नदीना मधि यो विप्रो अजायत । यजु० । २. १. पर्वतों के निकट और नदियों के मेल के स्थान में (बैठकर) ध्यान करने

से मनुष्य ज्ञानी होते हैं।

व्रत सिद्धि

(२) तपः—द्वन्द्व सहनं. द्वन्द्वश्च जिघत्सिपासे शीतोष्णे, स्थानासने, काष्ठमौनाकारमौने च व्रतानि चैव यथायोगं, कृच्छ्र चान्द्रायण सान्तपनादीनि। सू० व्यास भा० 2. 32. इसमें भूख प्यास सहना और यथा-योगकृच्छ्रचाँद्रायण व्रत करने का विधान है। "तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन,, । बृह० उप० ४. ४. २२. इस परमात्मा को ब्राह्मण वेद पढ़ने से जानना चाहते हैं तथा यज्ञ से, दान से, तप से और न खाने से। "संजनानां उपसीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यन्। रिरिक्वांसस्तन्वा कृण्वतस्त्वा, सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः,, ऋ० १. ७. २५. तेरा दर्शन करने के लिये मित्रजन अपने शरीर कृश करते हैं, अर्थात् कृच्छ्र चान्द्रायणादिक व्रत करते हैं।

मूर्ति-पूजा सिद्धि

(३) शुद्ध भूमि में आसन बिछा कर चन्दन अक्षत से पृथ्वी को पूजे। श्री वासुदेवाय गन्धं समर्पयामि, इसी प्रकार पुष्पं, धूपं, दीपं, नैवेद्यं, ताम्बूलं समर्पयामि इति। पंच महायज्ञ विधि, पहला संस्करण वैष्णवी संध्या।

दूर जाने की जरूरत नहीं यदि इसी बात को विचारें कि वर्तमान स० प्र० 14 वें समुल्लास पृष्ठ ५६५ "जिन को तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उन २ मूर्तियों को ईश्वर नहीं समझते किन्तु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं, तो फिर मूर्ति-पूजा का निषेध कैसा, मूर्ति द्वारा ईश्वर-भक्त का ही नाम तो मूर्ति-पूजा है। मुकद्दमा अभी खारज न सही, साक्षी ले लो 'वीतराग विषयं वा चित्तम्। योग सू० व्यास भा० १. ३७. वीतराग चित्तालम्बनोपरक्तं वा योगिनश्चित्तं स्थिति पद लभत इति।

वीतराग पुरुष को चिन्तन के आलम्बन से योगी उपरोक्त चित्त-स्थिरता को प्राप्त होता है। वामदेव और याज्ञवल्क्य आदि महापुरुष, जिन में विषयों का राग नहीं था और अब भी जो इस प्रकार के वीत राग पुरुष हैं, उनके जीवन के ध्यान से उनके चरित्र की तरफ झुकता हुआ साधक का चित्त भी उसी रंग में रंग जाता है और वह विषयों से विरक्त होकर सर्वत्र स्थिति के योग्य हो जाता है। पं० राजा राम प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर।

वितर्कविचाराऽनन्दाऽस्मिताऽनुगमात् सम्प्रज्ञातः १. १७ योग० सू०। व्यास भा०—वितर्कः चित्तस्य,लम्बने स्थूल आभोगः। चित्त को ठहराने के लिए स्थूल पदार्थ का आश्रय लेना वितर्क है। पं० तारा चरण जी ने हुगली (कलकत्ता) के लेख बद्ध शास्त्रार्थ में जब यह व्यास वचन मूर्ति पूजा की सिद्धि में लिखा तब स्वामी दयानन्द जी ने उस में लिखा

"इस प्रकार का वचन व्यास जी ने कहीं योग शास्त्र की व्याख्या में नहीं लिखा। देखो स्वामी जी की बनाई हुई पुस्तिका 'प्रतिमा पूजन विचार। व्यास जी का वचन भी मिलता है और इस से मूर्तिपूजा भी सिद्ध है। वेद मूर्ति बनाने का भी विधान बताता है। मूर्तिं निर्मानाय तां वल्मीक मृदा परिगृह्णाति।शतपथ। १, २. १०. मर्तिं निर्माय वराह विहिता मृदं परिगृह्णाति। शतपथ, ११. १. २. 11. मूर्ति बनाने के लिये सर्प की वल्मी और सूअर की गार की मिट्टी ले। मूर्तिंपूजा सिद्धि में तुम्हारा माना हुआ पूर्ण वेदज्ञ महर्षि व्यास भी तुम्हारे विरुद्ध साक्षी देता है। अभी कोई कसर बाकी है तो इसकी अधिक पुष्टि के लिए अनेक वेद मन्त्रों, शास्त्र के प्रमाणों और युक्तियों में से पढ़ो जैसे—आदित्यो ब्रह्मेत्यादेश;, छा० उ० 3. 19. सूर्य ब्रह्मा है यह आदेश है।

(1) उद्यते नमः...अथर्व० १७. १. १. २२.

(ग) अस्तंयत नमः...अथर्व० १७ १.१. २३. उदय होते हुए सूर्य को प्रणाम है, अस्त होते हुए सूर्य को प्रणाम है। भला जो सूर्य तो तुम्हारे सिद्धांत में जड़ है इस पर नमः शब्द के अर्थ प्रणाम करना दण्ड देना और अन्न देना है, तुम्हारी बुद्धि में कौन सा जचता है।

(घ) मान लो कि सत्यार्थ-प्रकाश में जो कुछ लिखा है वह वेदानुकूल है तो मैं पूछता हूं कि आप लोग वेद को छोड़कर ईसाइयत का प्रचार क्यों कर रहे हो। स० प्र० में जो क्षत योनि, विधवा विवाह, बालक और कन्याओं की इकट्ठी शिक्षा और सब के हाथ का खाने पीने का निषेध लिखा है। आप ऐसी २ बातों को किस धार्मिक आधार पर अपना कर प्रचार कर रहे हैं।

वह कुछ और कहने को ही था कि हम नमस्ते कह चलते बने।

घर लौटने पर ज्ञानचन्द ने मुझे ही नहीं कई और भी आर्य विद्वानों को "असली आज़ादी,, चिट के साथ भेजी। लिखा था 'तीर्थ का प्रसाद, भेजता हूं अपनी सुमति प्रदान करें। मैंने कई सज्जनों के क ने पर उपेक्षा की पर एक दिन वह मुझे स्वयं मिला और आग्रह पूर्वक पूछने लगा। मैंने उत्तर दिया कि बे-सींग और बे-पूँछ के मनुष्याकार पशु को मनुष्य बनाने के लिये यह पुस्तक यथा नाम तथा गुण है। यह किसी मूर्ख के उद्‌गार नहीं, इस लिए पढ़ने वाले पर इस का प्रभाव अवश्य पड़ता है। धर्म के नाम पर प्रचलित कुरीतियों को हटाने, धर्म के नाम पर झगड़ों को निपटाने, धर्म पर किये आक्षेपों को मिटाने, आत्मा, परमात्मा साक्षात्कार के सुगम अनुभूत साधन बताने और अच्छे नागरिक बनाने के लिये यह बड़ी ही उपयोगी मनोरञ्जक पुस्तक है। मैंने इसके स्वाध्याय से बहुत सी नई बातें सीखी हैं।

इसके प्रचार से सकल संसार आर्य्य बन सकता है। इसमें हर किसी को अपने अनुकूल सुख प्राप्ति के साधन मिल सकते हैं। इसमें वह पक्षपात ही नहीं कि सभीको एक ही जंजीर में जकड़े। अपने नापका जूता अपने ही पैरों की भली भांति रक्षा किया करता है न कि बेमेल जूता। यही बात साधनोंके विषयमें साधक पर लागू होती है। ज्ञानचन्द मेरी बात सुन बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला मेरा भी ऐसा ही अनुभव है।

मुझे है काम ईश्वर से, जगत रूठे तो रूठन दे।

संसारचन्द—इस पुस्तक में जो कुछ आर्य्य समाज के विरुद्ध लिखा है क्या इसका प्रतिवाद हो सकता ?

सर्वमित्र—सत का खण्डन कैसे हो और स्वामी जी के लेख को रद्द करने वाले हम क्या कहलाएँगे।

संसारचन्द—कोई उदाहरण दीजिये जिस से यह सिद्ध हो कि समाज स्वामी जी के लेख का विरोध

विरोध कर रहा है ।

सर्वमित्र—आप बताइये कि स्वामी जी ने आर्य्य समाज की स्थापना की । क्या वह उस समय वेदज्ञ नहीं थे ?

संसारचन्द—वेदज्ञ थे ।

सर्वमित्र—फिर उन के रचित ग्रन्थों में वेद विरुद्ध सिद्धान्त कैसे माने जाएँ विशेषतया जब कि लेख भी संस्कृत में हों और वादि स्वामी जी के ही प्रमाण देता हो ।

संसारचन्द—इस विषय में मैं आप से सहमत हूं ।

सर्वमित्र—आप स्वयं "असली आज़ादी" पढ़िये आज्ञा पालन के लिये कुछ कहे देता हूं । (१) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका सृष्टि विषय में ईश्वर की सामर्थ्य से प्रकृति की उत्पत्ति मानी गई है और यही बात

पंचमहायज्ञ विधि में भी स्वीकार की गई है फिर हम प्रकृति को अज कैसे सिद्ध करें। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में मुक्ति को सदा के लिए माना गया है। फिर इससे वापिसी कैसे।

संसारचन्द—स्वामी जी ने कभी मूर्ति-पूजा और मृतक-श्राद्ध आदि माने और फिर आप ही उनका खण्डन किया हो मेरी समझ में यह बात नहीं आती।

सर्वमित्र—समाज में काम करने वालों को अपने साथ रखने के लिए, जैसे स्वामी जी ने प्रथम स० प्र० और संस्कार-विधि में मांस भक्षण का विधान लिखा। वेद भाष्य और दूसरी बार स० प्र० लिखते समय भी मांस भक्षण लिखा परन्तु मु० समर्थ दान प्रबन्ध कर्ता वैदिक यन्त्रालय अजमेर के विरोध करने पर प्रूफ शोधते समय स्वामी जी को अपना लेख बदलना पड़ा। (देखो स्वामी जी का पत्र पृ०

(३४०) ४०६ सु० समर्थ दान के नाम ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन सम्पादक पं० भगवद्दत्त बी० ए० (पहला संस्करण) 'उनमें से जहाँ २ माँस खाने का विषय काट दिया और उचित अर्थ कर दिया है। यदि शीघ्रता से शोधने में मांस खाने में कोई रह गया हो तो उसको तुम कटवा देना और उचित करवा देना'। अब तो आप को मेरी बात समझ में आ गई होगी, मानना न मानना आपका काम है। परन्तु हठ का पक्षपाती बना रहने से आर्य्य-समाज धार्मिक जगत् में अपना गौरव खो बैठेगा। सचाई छुपाने से छुपेगी नहीं। न ही सभी को सदा के लिये मूर्ख बना कर रखा जा सकता है। स्वार्थ में जकड़े हुए उपेक्षा भले ही करो किन्तु सत् को दबाना हितकर नहीं। सत् ब्रह्म है और सत् ही धर्म है और मारा हुआ धर्म मार देता है। यह बात आप स्वयं विचार लें यदि वर्तमान सत्यार्थ-प्रकाश ११ समु०

पृ० ३१० पर 'अनुमान है कि शङ्कराचार्य आदि ने तो जैनियों के मत के खण्डन करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि देश काल के अनुकूल अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये बहुत से स्वार्थी विद्वान् अपने आत्मा के ज्ञान के विरुद्ध भी कर लेते हैं' जो लिखा है वह सत् है तो हमने भी इसका अनुकरण किया हैं। क्योंकि वेद में एक भी ऐसा मन्त्र नहीं मिलता जिसके साथ निश्चयात्मक अव्ययों अर्थात् 'एव, हि, खलु, वै इत्यादि. का प्रयोग द्वैतवाद में हुआ हो और अद्वैतवाद की पुष्टि में ऐसे मन्त्र मिलते हैं जैसे-- "पुरुष एवेदं सर्वं" निश्चय यह सब कुछ पुरुष ही है। यह मंत्र चारों वेदों के पुरुष सूक्त में पाया जाता है। इसकी पुष्टि "सर्वं ह्येतद् ब्रह्म,, माण्डूक्य उप० २-- सर्वं खल्विदं ब्रह्म, छां० ३। १४। और भी बहुत से मन्त्र कहते हैं। आर्य्य-समाज द्वैतवाद का तो वेद

में कोई स्थान ही नहीं। छान्दोग्य उपनिषद् में ७।१३।१ स ७।२४।१ तक लिखा है 'जो भूमा है वह सुख है. अल्प (हद वाले) में सुख नहीं है। केवल भूमा ही सुख है। जहाँ पुरुष न कुछ और देखता है, न कुछ और सुनता है, न कुछ और जानता है, वह भूमा है। और जहाँ पुरुष कुछ और देखता है, और सुनता है, और जानता है, वह अल्प है। यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्। जो भूमा है वह अमृत है, जो अल्प है, वह मर्त्य (मरने वाला) है। इन श्रुतियों के अनुसार अविनाशी तत्व एक ही है। बात भी सच्ची है। हम आत्मा के स्वरूप को ही नहीं जानते। हम तो अहंकार को ही आत्मा मान बैठे हैं। धर्म से तो हमको दूर का भी वास्ता नहीं। हमने तो बातों से बाल की खाल उतारना सीखा है। हमारे जीवन में सरलता का नाम नहीं, हो भी कैसे जब कि कुटिलता ने

हमारे मन में डेरा जमा रखा है। ऐसी परिस्थिति में हमें शान्ति कहाँ! धर्म के नाम पर लोगों ने दल बन्दियां कर रखो हैं, पार्टियां बहुत, काम कुछ भी नहीं। क्या यह ठीक नहीं कि करामातों और सिद्धियों को मानते वाले आज एक भी व्यक्ति नहीं दिखा सकते। मै मंत्री और आप प्रधान हैं, इस अधिकार पर जमे रहने के लिये आप क्या २ पापड़ बेलते रहते हैं। न आपके पास समय न ही आपको जिज्ञासा। न ही सत्य से प्रेम। धर्म तो आज धनका दास है। इस लिये हमारा धर्म भी विद्या और सदाचार पर नहीं, किन्तु धन पर निर्भर हो रहा है। हमें धर्म प्रचारार्थ धन चाहिये वह शुभ अथवा अशुभ कमाई का क्यों न हो।

संसारचन्द—पण्डित जी! हमें अपने सुधार के लिये क्या करना चाहिये?

सर्वमित्र—घड़ियाँ नहीं पहरों अपने २ ढंग से

काम करने वालों की प्रायः व्यवहार समय ऐसी गति देखी गयी है जैसी कुत्ते की पूंछ जब नलकी से बाहर निकाली तब टेढ़ी की टेढ़ी। आपने कठ० उप० १।२।२४ में पढ़ा ही है कि 'वह पुरुष जो अपने दुराचारों से नहीं हटा, जो शान्त नहीं, (अपने ऊपर वश नहीं रखता) जिसका चित्त एकाग्र नहीं, जिसका मन शान्त नहीं, वह इसको (खाली) प्रज्ञा (पुस्तकों के ज्ञान) से नहीं पा सकता।

सज्जन ! अक्षय सुख चाहने वालों, अपने अस्तित्व को स्वीकार करने वालों और अपनी इन्द्रियों के स्वामीपन के अभिमानियों में से एक आप भी हैं, इस बात से आप को भी इन्कार नहीं। परन्तु यदि कोई अपने असली स्वरूप को जो स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से अतिरिक्त जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का साक्षी, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव है, अनुभव करता है तो

उसी का मन उसके वश में होता है वही परम सुखी है। यही मनु महाराज और अन्य महात्माओं का आदेश है। यमों का व्रती ही व्यवहार में संसारी प्रलोभनों से बचकर शान्ति का अनुभव करता है और विश्व-शान्ति की स्थापना में सहायक बनता है। यही सार धर्म है जिस को "असली आज़ादी" में कल्य ण अर्थ अनेक ढंगों से वर्णन किया है।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ मनुः

दूसरे के अधीन होना ही सम्पूर्ण दुःख है और स्वाधीनता ही पूर्ण सुख है। यह सुख दुःख का संक्षिप्त लक्षण जाने।

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥ मनुः

विद्वान सदा यमों का सेवन करे न कि केवल नियमों का। जो यमों को न करता हुआ केवल नियमों

को करता है वह गिर जाता है। (हिंसा न करना, सत्य भाषण, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच यम हैं, शौच, सन्तोष. तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं।

मैं आपका ध्यान तुलसी कृत रामायण की ओर दिलाना चाहता हूं। इन थोड़े से श्रुति अनुसारी शब्दों से आप शीघ्र समझ जाएँगे—

धरमु न दूसर सत्य समाना,
आगम निगम पुरान बखाना।
सत्य मूल सब सुकृत सुहाये,
वेद पुरान बिदित मनु गाए।
करम वचन मन छाड़ि छलु,
जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सदनेहुँ नहीं,
किए कोटि उपचार।
काम आदि मद दम्भ न जाकें,

बात निरन्तर बस मैं ताकें।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा,

मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

तजि मद मोह कपट छल नाना.

करऊं सद्य नहि साधु समाना॥

दो हरफी बात, कपट छोड़ सरल बनो, इसी में कल्याण है। सिद्धान्त रूप में सत्य का विरोधी कोई भी मत नहीं। सत्य ही सदाचार की कुञ्जी और शान्ति की पूंजी है। दूर जाने की जरूरत नहीं, हम आर्य्य (श्रेष्ठ) कहलाते हैं, क्या हम में यह साहस है कि मैं और आ, या तो स: प्र० को असली सिद्ध करें वरना इसके जाली होने का ढिंढोरा पिटवा दें। जहाँ झूठ का पक्षपात हो वहाँ धर्म का क्या काम और इसका फल सुख शान्ति कैसी? पक्षपात की दीवालें हटा दो, स्वयं आर्य्य बनो और अपने जीवन से संसार को आर्य्य बनने की शिक्षा दो। हम यह

जानते हुए भी कि—

फसाद मजयब ने जो हैं डाले,
वहीं ही वह नाहशर मिटने वाले।
यह वह जङ्ग है कि सुलह में भी,
ठनी की ठनी रहेगी ॥

ईसाइयों के दोनों फिरके परस्पर सौ साल तक लड़ते रहे, ईसाई मुसलमानों से लड़े. मुसलमान आपस में लड़े और आज भी धर्म के नाम पर पाकिस्तान में अहमदियों पर आफत आई और १९४७ में लाखों इनसानों ने हिंसक पशुओं से भी बढ़कर क्रूरता दिखाई। शोक ! हम फिर भी धर्म को जिस का दूसरा नाम सत्य है समझाने और अपनाने का यत्न नहीं करते। मैं वाणी से कुछ नहीं कहता ईश्वर की कृपा से आप मुझे शीघ्र ही मनुष्य बना हुआ देख लेंगे। अथवा धार्मिक पक्षपात को छोड़कर अब मैंने सत्य पालन का व्रत धारण कर लिया है।

इसलिए पूर्ण विश्वास है कि कुटिलता गई और शान्ति आई जिसके लिये सभी कुछ करना पड़ता है।

मन वस कियो न आपना, स्वतन्त्रता का अभिमान
ऐसे चतुर मनुष्य का, रुलिये मूरख जान॥
आत्म-पद चीन्यो नहीं, विषय भोग गलतान।
ऐसे नर और पशु में, रुलिये भेद न जान॥

प्रभु हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाओ ताकि हम सन्मार्ग को अपना कर अपना जीवन सफल करें।

इति

विज्ञप्ति

सत्य की शपथ लेकर सत्य के लिये सत्य कहता हूं, कि श्री स्वामी दयानन्द जी के मुद्रित पत्रों और ग्रन्थों के आधार पर मैंने निश्चय किया है कि वर्तमान **सत्यार्थ-प्रकाश** जाली है। इसे स्वामी दयानन्द जी की बनाई हुई तथा सिद्धांतों को वेदानुकूल सिद्ध करने वाले को ५००) रु० नकद इनाम।